Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC)
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre
DOI: 10.46523/jarssc.04.01.25
Multidisciplinary, Open Access
Impact Factor: 3.575

ISSN: 2582-2004
Volume 04, Issue 01

अज्ञेयः एक समीक्षात्मक मूल्यांकन

निरंजन राय
एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी विभाग
बैसवारा डिग्री कालेज लालगंज, रायबरेली

अज्ञेय के साहित्य और जीवन दृष्टि पर दृष्टिपात करने से पूर्व कुछ बातें उसकी पृष्ठभूमि पर करना लाजिमी होगा। सन् 1940 के आसपास ब्रिटिश हुकूमत का चिराग बहुत तेजी से जलने लगा था जिसमें भारतीय जनमानस पूरी तरह झुलस रहा था। उससे उस समय भारत के मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी तथा ब्रिटिश हुकूमत के शुभेक्षु भी विचलित हो रहे थे। मध्यवर्गी बुद्धिजीवी के हृदय में असंतोष की ज्वाला धड़कने लगी थी। अपनी संवेदनशीलता के कारण वह बहुत व्यथित और बेचैन दिखाई देने लगा था। वैसे स्वतंत्रता की भावना का दिग्दर्शन जनता में सन् 1942 के आंदोलन के समय से ही दिखने लगता है। इसके साथ ही इस आंदोलन की महत्वपूर्ण विशेषता यह रही कि मध्य वर्ग के साथ निम्न मध्य वर्ग के लोग भी आजादी की लड़ाई के साथ जुड़ते चले गए। इस सिलसिले में इतिहासकार विपिन चंद्र का कहना है। ''विद्रोह ने अधिकतर यह रूप धारण किया कि बड़ी संख्या में किसान किसी पास के कस्बे में जुटते और सरकारी सत्ता के सभी प्रतिको पर हमला बोल देते। कहीं आग लगा दी जाती, कहीं सरकारी अधिकारियों से मुठभेड़ होती। दमन होता, लेकिन इससे जनता का उत्साह कम नहीं हुआ।'' तत्पश्चात एक तरफ आजादी के आंदोलन की असफलताओं ने उसे बेचैन कर दिया था तो दूसरी तरफ ब्रिटिश हुकूमत के सुभुच्छू शीर्ष पर बैठे हुए लोग इस बात से परेशान थे कि अगर ब्रिटिश हुकूमत चली गई तो हमारी आनरेरी मजिस्ट्रेटी, तालुकेदारी और जमीदारीं का क्या होगा? इन सब अंर्तविरोधों में कुछ लोग प्रगतिवाद या प्रगतिशील जीवन दृष्टि को हसीए पर लाकर एक नूतन जीवन दृष्टि की तरफ बढ़ने का प्रयास किया। ऐसी स्थिति में जिस काव्य धारा का प्रादुर्भाव हुआ उसमें न तो छायावाद की तरह मधुर एवं कोमल कल्पनाओं की रंगीनियां थीं और न ही प्रगतिवाद के ठोस यथार्थ की ईमानदारी और संघर्षशीलता थी। तभी तो उसमें प्रयोगशीलता के प्रति अद्भुत ललक थी। कविता के नए–नए रास्तों के खोज की प्रवृत्ति थी। उसमें न ही छायावादी मधुर कल्पनाओं से युक्त मंगल भावना थी अपितु प्रगतिवाद के परिवर्तनों से विकसित संवेदना को नई सौंदर्य दृष्टि देने की उत्कंठा थी। व्यक्ति की इकाई तथा समाज व्यवस्था के बीच संबंध को नया स्वर देने एवं उसे आगे बढ़ाने की लालसा थी। इस काव्य धारा में वृहत्तर अर्थों को प्रतिध्वनित करने वाले प्रतिकों एवं बिम्बो को सजाकर एवं संवारकर रखने के लिए अधिक जोर दिया गया था। इसी काव्य धारा को प्रयोगवाद के नाम से जाना गया।

Received: 19.12.2020 **Accepted:** 14.01.2021 **Published**: 14.01.2021

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC)
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre
DOI: 10.46523/jarssc.04.01.25
Multidisciplinary, Open Access
Impact Factor: 3.575
ISSN: 2582-2004
Volume 04, Issue 01

हिंदी कविता के क्षेत्र में सन् 1943 में तार सप्तक के प्रथम प्रकाशन से प्रयोगवाद का जोरदार शुभारंभ हुआ। इस संग्रह में मुक्तिबोध, नेमीचंद जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवें, गिरिजा कुमार माथुर, रामविलास शर्मा और आज्ञेय थे। इस संग्रह के संपादक भी अज्ञेय थे। अज्ञेय जी ने इस सप्तक की भूमिका में इस नवीन काव्य धारा की वकालत करते हुए कविता विषयक अपनी मान्यताओं का उद्घाटन भी किया है। वस्तुतः अज्ञेय जी हिंदी की कविता में जिस काव्य धारा के लिए मार्ग का पथ प्रदर्शन कर रहे थे वह आधुनिकतावादी जीवन मूल्यों से जुड़ा हुआ था। इस ऐतिहासिक परिघटना का मूल्यांकन करते हुए डॉ0 नामवर सिंह ने लिखा है ''यह ऐतिहासिक तथ्य है कि हिंदी साहित्य में सन् 38–39 के आसपास बौद्धिक लेखन एवं कवियों का एक ऐसा वर्ग आया, जो पश्चिम के आदर्श 'इंतेलिगात्सिया' से भले कुछ भिन्न हो, किन्तु परंपरागत साहित्य संस्कारी 'लितेराती' से निश्चय ही भिन्न था। उल्लेखनीय है कि अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर आदि इस दौर के सभी नए कवि अपने शिक्षा संस्कारों में हिंदी की ठेठ परंपरा से बाहर के थे। यही नहीं, बल्कि इसमें से अधिकांश कवियों का मानस गठन, भारत की अपेक्षा पश्चिम और हिंदी की अपेक्षा अंग्रेजी के हवा पानी से हुआ था। इसलिए इन कवियों में संशय, दुविधा, अश्रद्धा, आदि–भाव परंपरागत साहित्य संस्कारी हिंदी कवियों से नितांत भिन्न थे, यहां तक कि उनकी भाषा के मुहावरे भी भिन्न थे''।[2] इसी क्रम में सन् 1951 में दूसरा और 1959 में तीसरे सप्तक का प्रकाशन अज्ञेय जी के संपादकत्व में हुआ।

अज्ञेय जी शायद इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि व्यक्तित्व निर्माण अपने परिवार, परिवेश और परम्पराओं के अस्वीकार से गढा जाता है। तभी तो अज्ञेय जी को छः भारतीय दर्शन में से एक भी स्वीकार नहीं हुआ। इसके लिए उन्होंने डेनिश दार्शनिक किर्केगार्ड के द्वारा उद्घाटित अस्तित्ववादी दर्शन जिसे आगे चलकर ज्या पाल सार्त्र ने सुव्यवस्थित करते हुए दार्शनिक जामा पहनाया। इसीलिए अस्तित्ववाद आगे चलकर ज्या पाल सार्त्र के नाम से ही ज्यादा जाना गया।[3] अज्ञेय जी ने जिस अस्तित्वादी धारा को अपनी दार्शनिक पृष्ठभूमि बनाई वह कार्ल यास्पर्श, गैब्रियल मार्सेल एवं ज्या पाल सार्त्र द्वारा सुव्यवस्थित की गई धारा थी। अस्तित्ववादी दर्शन की शुरुआत करने वाले डेनमार्क वासी सॉरेन कीर्केगाड दुनिया के पीछे किसी नियोजित व्यवस्था के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। वस्तुवादी दृष्टि को अस्वीकार करते हुए कीर्केगाड ने घोषणा की कि सत्य केवल आत्मपरक है इसीलिए वह मनुष्य के वस्तुपरक संसार की बजाय अपने चिंतन का विषय ऐसे मनुष्य को बनाता है जो वासनाओं और चिताओं से ग्रस्त है। उसने व्यक्ति को आनंद, चिरस्थाई आनंद देने के लिए इंद्रिय लोलुप प्राणी बताया है। इसी क्रम में संत्रास, चिंता, भय, कुंठा आदि भावनाओं पर विचार करते हुए उसने इसे आधुनिक मानव की स्वाभाविक प्रकृति बताया।

Received: 19.12.2020 **Accepted:** 14.01.2021 **Published**: 14.01.2021

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC)
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre
DOI: 10.46523/jarssc.04.01.25
Multidisciplinary, Open Access
Impact Factor: 3.575
ISSN: 2582-2004
Volume 04, Issue 01

जर्मन दार्शनिक नीत्शे की चर्चा भी यहां अत्यंत प्रासंगिक है। नीत्शे ने मनुष्य को स्वभावतः क्रूर, दुस्साहसी एवं दम्भी पशु माना है। साधारण मनुष्य के प्रति नीत्शे अत्यंत अनुदार था। उसने डार्विन के 'विकासवाद' का गलत विश्लेषण करते हुए जातीय श्रेष्ठता और प्रभुत्व की इच्छा के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। यहीं से अति मानव की परिकल्पना का जन्म हुआ। नीत्शे के अतिमानव की परिकल्पना से सर्वाधिक प्रभावित होने वाला वर्ग अभिजात वर्ग था। यह वह वर्ग है जो शेष मानवता को तुच्छ एवं हीन मानता था, है और मानता हैं और अपने को विशिष्ट मानकर मानव जाति की उपलब्धियों का अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहता है। वह जनता को भीड़ मानते हुए उसकी पूर्ण उपेक्षा करता है। नीत्शे की धारणा थी कि सामान्य जनता विशिष्ट अभिजात व्यक्तियों द्वारा शासित होने के लिए ही है। इस प्रकार अति मानव की परिकल्पना पूंजीपति वर्ग को विशिष्ट और उसके शोषण को उचित ठहराती है।

कार्ल यास्पर्स ने समकालीन वैज्ञानिक सभ्यता को सामाजिक रोग माना है। फ्योदोर दोस्तोवस्की फ्रेंज काफ्का ज्यां पाल सार्त्र एवं अल्वेयर कामू जैसे साहित्यकारों का योगदान भी इस दिशा में पर्याप्त है। कामू और काफ्का के अत्मनिष्ठ सोच को भी ज्यां पाल सार्त्र ने दार्शनिक जामा पहनाया है। ज्यां पाल सार्त्र का कहना है कि हमारे कर्मों को दिशा देने वाले कोई बाहरी मूल्य आदर्श नहीं हैं बल्कि वह हमारी संवेदना ही है जिसके आधार पर हम निर्णय करते हैं। लेकिन इस संवेदना को मानने का कोई वस्तुगत आधार नहीं होता। उनके अनुसार हम अपने विवेक के अतिरिक्त किसी व्यक्ति, दल, देश या विचारधारा पर विश्वास नहीं कर सकते। सार्त्र भविष्य की किसी नियत दिशा में विश्वास नहीं करते क्योंकि उनका मानना है कि कल का मनुष्य अपने युग का निर्माण किस तरह करेगा आज नहीं कहा जा सकता। अब यहां गौर करने लायक है कि सार्त्र किस तरह यहां निष्क्रियता को प्रोत्साहित कर रहे हैं। आत्मपरक यथार्थ के नाम पर अपने चतुर्दिक परिवेश को नकार रहे हैं।

नई कविता के आधुनिकतावादी भावबोध से जुड़े हुए व्यक्तिवादी रचनाकारों ने सांस्कृतिक संकट और व्यक्ति की स्वतंत्रता के नारे केवल शीत युद्ध के प्रभाव में आकर ही नहीं दिए अपितु इसके पीछे अस्तित्ववादी चिंतन का प्रभाव भी था और अस्तित्ववादी चिंतन को प्राण आधुनिकतावादी मूल्यों से मिलता है। हिंदी समीक्षा में कई बार आधुनिकता और आधुनिकतावाद को घाल–मेल करके एक ही तरह बताया गया है। जबकि दोनों की प्रकृति भिन्न ठहरती है। इस सिलसिले में आलोचक शिवकुमार मिश्र का मंतव्य देखना गौरतलब होगा। वे लिखते हैं ''आधुनिकता हमारे जीवन दृष्टि में एक जीवंत चेतना है, एक सक्रिय जीवन स्थिति, एक गत्यात्मक विचार है, जो मनुष्य को अपने समय के सारभूत सत्य से जोड़ता है और उसकी जिंदगी को उसके अपने समय के लिए ही नहीं, आगे के लिए भी अर्थवान बनाता है, उसे जड़, निष्क्रिय, अप्रासंगिक और व्यथित नहीं होने देता हैं।''[4] इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिकता

Received: 19.12.2020 **Accepted:** 14.01.2021 **Published**: 14.01.2021

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC)
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre
DOI: 10.46523/jarssc.04.01.25
Multidisciplinary, Open Access
Impact Factor: 3.575
ISSN: 2582-2004
Volume 04, Issue 01

वह चिंतन प्रक्रिया है जो जड़ता का विरोध करती है और मनुष्य की चेतना को परंपरा के दिशा, वर्तमान के अंर्तविरोध एवं भविष्य की चिंता से जोड़ती है। जबकि, आधुनिकतावाद एक स्पष्ट वैचारिकी है, इसके निर्माण में पूंजीवाद का अंतर विरोध कारक रहा है और साथ ही साथ अस्तित्वादी जीवन दर्शन ने उसे पुष्पित एवं पल्लवित किया। आधुनिकतावाद सामाजिक समस्याओं के बजाय व्यक्ति के स्वरूप एवं आत्मबोध को स्थान देता है। विद्रोह उसका मूल स्वर है और यह विद्रोह हर प्रकार के मूल्य, परंपराओं एवं सामाजिक नैतिकताओं से है। आधुनिकता और आधुनिकतावाद के विभाजन को स्पष्ट करते हुए प्रोफेसर मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है ''आधुनिकतावादी साहित्य चिंतन परंपरा विरोधी होने के नाम पर परंपरा की दिशा और अस्तित्व को अस्वीकार करता है। आधुनिक संवेदनशीलता के निर्माता अनेक रचनाकारों ने परंपरावाद का विरोध करते हुए भी परंपरा के सर्जनात्मक स्वरूप को स्वीकार किया है, लेकिन परवर्ती आधुनिकतावादी रचनाकारों और आलोचकों ने परंपरा को 'अधिकारवादी परंपरा और पुरणपंथी चेतना' का पर्याय मानकर उसका विरोध किया है''।[5] इस संदर्भ में दुर्गा प्रसाद गुप्त का कहना है ''ऐसी भ्रमपूर्ण स्थिति में कभी किसी को प्रक्रिया तो, कभी मूल्य, कभी विधि, कभी कला दिशा, कभी साहित्य कालागत प्रयोग और कभी आंदोलन समझ लिया जाता है एवं आधुनिकतावाद को आधुनिकता के साथ सम्मालित कर दिया जाता है, जबकि हिंदी में आधुनिकता एक व्यापक अर्थ को द्योतित करता है और आधुनिकतावाद एकमात्र साहित्य कालागत आंदोलन के अर्थ और प्रवृत्ति को और इस तरह आधुनिकतावाद को आधुनिकता के अंतर्गत समाविष्ट कर लिया जाता है, जबकि हिंदी में आधुनिकता की शुरुआत हिंदी नवजागरण से और आधुनिकतावाद की शुरुआत प्रयोगवाद या उसके आसपास से होती है''।[6]

नई कविता के जिन कवियों पर अस्तित्व का गहरा असर है उसमें अज्ञेय, धर्मवीर भारती और कुंवर नारायण का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। अज्ञेय की कविताओं का अध्ययन करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनमें अस्तित्वादी प्रवृत्तियों को व्यक्त करने के लिए लगातार मंथन चलता रहा है। ध्यातव्य है कि यह मंथन अस्तित्वादी प्रवृत्तियों को सही परिप्रेक्ष्य में समझाने का कम, नए–नए रूपों, प्रतीको और बिंबो के माध्यम से व्यक्त करने का ज्यादा है। जैसे–'मेरे चेहरे में वागड़ियों के झोपड़े से झांकता है एकलव्य, द्रोणाचार्य अभिसंधि करते हैं, मुनियों की ब्याजहीन आंखों में, पोष्य राजहंस माला नीर–क्षीर अलग करती है, लाख–लाख मछलियां पेटिया उलट दम तोड़ देती हैं, मेरे चेहरे में भोले बालकों के भविष्य का विश्वास है।' इस प्रकार अज्ञेय में आत्मप्ररकता का आग्रह बहुत अधिक है। समाज व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करता है लेकिन व्यक्ति का भी समाज के प्रति कोई कर्तव्य है, इसे वह नहीं मानते। 'नदी के दीप' और 'उधार' कविताएं इसका उदाहरण हैं। जीवन को वह मृत्यु के दिशा से

Received: 19.12.2020 **Accepted:** 14.01.2021 **Published**: 14.01.2021

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC)
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre
DOI: 10.46523/jarssc.04.01.25
Multidisciplinary, Open Access
Impact Factor: 3.575
ISSN: 2582-2004
Volume 04, Issue 01

अलग नहीं कर देख पाते। जीवन काल के प्रवाह में एक क्षण की भांति है उसे एक क्षण में व्यक्ति समुद्र की बूंद की तरह उछल कर पुनः समुद्र में मिल जाता है। 'सहसा एक बूंद उछली सागर के झाग से' मृत्यु का बोध अज्ञेय में तीव्रता के रूप में भी प्रकट हुआ है। जीने की इच्छा और मृत्यु भय अज्ञेय ने कई कई रूपों में प्रकट किया है। 'देखती है ढीठ' कविता में हवा का एक बुलबुले भर पीने को उछली हुई मछली, जिसकी मरोड़ी हुई देह में उसकी जिजीविषा की उत्कट आतुरता मुखर है। इसी प्रकार 'जीवन' नामक शीर्षक से कविता में अज्ञेय लिखते है–यहीं पर/ सब हंसी/सब गान होगा/ यहां से एक जिज्ञासा/अनुत्तर जागेगी अनिमेष/यहां पर मृत्यु की सच्चाई को आत्मसात करने के कारण जीवन के प्रति एक निर्लिप्त भोग का भाव भरा गया है। वस्तु एवं जब तक जीवन है जब तक भोगने के लिए है। फूल को प्यार करो, पर झरे तो झर जाने दो। 'सोन मछली' कविता में भी अज्ञेय ने भी इसी जीवन दर्शन को अभिव्यक्त किया है।

अस्तित्ववाद का प्रभाव प्रभावात्मक स्तर पर ही अधिक परिलक्षित होता है। कवियों में व्यक्ति की आत्मकथा पर बल सामूहिकता का विरोध, जनता को भीड़ समझना तथा जीवन के प्रति विकृत मनोवृति का भाव पर्याप्त दिखाई देता है। इसीलिए नई कविता के दौर में व्यक्ति स्वातंत्र्य की तरह जिस शब्द को ज्यादा उछाला गया वह है अनुभूति। अनुभूत की प्रमाणिकता, अद्वितीय अनुभूति, कला अनुभूति, रस अनुभूति, सौंदर्य अनुभूति, सहजानुभूति न जाने किन–किन रूपों में अनुभूति की चर्चा की गई और अनुभूत की अद्वियतीयता का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया।

नई कविता के कवियों में प्रारंभ में व्यक्तिवादी प्रवृत्तियां बहुत हावी नहीं थी। परंतु परवर्तीकाल में अस्तित्वाद और शीत युद्ध के प्रभाव में जनता को भीड़ समझने और अकेलेपन के प्रति अतिरिक्त मोह के कारण इस बिंदु पर पहुंच जाते हैं। इस संदर्भ में लक्ष्मीकांत वर्मा की चर्चा ध्यातव्य है। लक्ष्मीकांत वर्मा के लिए इस दुनिया का भी अस्तित्व नहीं है। फलतः अस्तित्वादी दुनिया में अस्तित्व की पहचान तो एक मुर्दे के रूप में ही हो सकती है जैसे–मैं एक अदृश्य दुनिया में जी रहा हूं/और अपने को टटोल कह सकता हूं/ दावे के साथ/ मैं एक साथ ही मुर्दा भी हूं/ और ऊदबिलाव भी/ मैं एक बासी दुनिया की मिट्टी में/दबा हुआ अपने को खोद रहा हूँ।

इस प्रकार नई कविता की अस्तित्वादी मनोवृति का यह स्वाभाविक परिदृश्य है। हालांकि कथा साहित्य में यह प्रभाव इतना नहीं दिखाई देता फिर भी अज्ञेय जी के उपन्यास 'नदी के दीप' और 'अपने–अपने अजनबी' में इस अस्तित्वाद के प्रभाव को देखा जा सकता है। इस अध्ययन में पूर्ण रूप से सैद्धांतिक बिंदुओं पर ही केंद्रित हुआ गया हैं समीक्षा के व्यावहारिक पक्ष पर कम ही चर्चा हो पाई है। वैसे सैद्धांतिक रूप यानी दार्शनिक पृष्ठभूमि और मानव जीवन में उसकी उपादेयता स्पष्ट हो जाए

Received: 19.12.2020 **Accepted:** 14.01.2021 **Published**: 14.01.2021

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC)
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre
DOI: 10.46523/jarssc.04.01.25
Multidisciplinary, Open Access
Impact Factor: 3.575
ISSN: 2582-2004
Volume 04, Issue 01

तो साहित्य को समझने में कठिनाई नहीं होती। अज्ञेय जी की दार्शनिक पृष्ठभूमि और साहित्य को माथते हुए यह कहा जा सकता है कि वह पूरी तरह से अभिजात वर्ग की सुरक्षा कवच की तरह है तथा सामान्य जन के जीवन से विमुख है क्योंकि अस्तित्ववाद की स्पष्ट अवधारणा है कि सत्य केवल आत्मपरक है तथा एक व्यक्ति अपने अनुभूत सत्य को दूसरे को अनुभूत नहीं करा सकता। इस मायने में अस्तित्ववाद का कुछ सकारात्मक प्रभाव कहा जा सकता है कि उसने रूढ़ि विरोधी और परंपरा भंजन का कार्य किया। क्योंकि सामंतवाद के समापन और पूंजीवाद के उदय के साथ उत्पन्न नवीन सामाजिक समस्याओं को समझने का एक आत्मगत प्रयास था। परंतु इसने पूंजीवाद के संकट को उसके वस्तुगत रूप में या वर्गों में विभाजित समाज के आधारों में न खोज कर ऐसे कर्म में खोजा था जो वस्तुतः इस संकट के वास्तविक कारण नहीं थे बल्कि इस व्यवस्था के अभिव्यक्त थे। यद्यपि भारत को महायुद्धों के उस भयावह दौर से बहुत प्रभावित नहीं होना पड़ा, फिर भी विश्व पूंजीवाद के संकट के बढ़ते प्रभाव एवं दबाव के कारण यहां का जीवन भी काफी प्रभावित हुआ।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि इस दर्शन ने लोगों को निराशा के मार्ग की ओर धकेला क्योंकि अगर कोई समाधान का उपाय न रहा तो इस दुनिया में व्यक्ति प्रत्येक कार्य को प्रभावहीन मानेगा और वह हीन भावना का शिकार हो जाएगा। अस्तित्ववाद और आत्मपरखता और देकार्तवादी 'मैं सोचता हूँ' इस पर आधारित है। यह ऐसी स्थिति है जहां से एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से जुड़ नहीं सकता। 'मैं सोचता हूँ' की भावना द्वारा दूसरों तक पहुंचा नहीं जा सकता। नितांत आत्मपरक जीवन दर्शन के आलोक में रचा गया साहित्य जनसामान्य के लिए कतई उपयोगी नहीं हो सकता इसीलिए अज्ञेय जी का साहित्य जनसामान्य की पीड़ा एवं समस्या को प्रकाशित करने वाला साहित्य नहीं है। यह चिंतन की विलसता का साहित्य है। कुछ विद्वानों ने अस्तित्ववाद को बहुत सकारात्मक और उपयोगी सिद्ध करने का प्रयास किया है किंतु यह उसी तरह व्यवहार में निष्प्रभावी है और बहस का विषय बनकर रह गया है जैसे भारत में धर्म, धर्म का ही एक पक्ष है कर्मकांड, कर्मकांड हाबी हो गया और धर्म का मर्म भारतवासियों को समझाते–समझाते सदियां निकल गईं। परंतु वह समझ से परे होता चला गया। आम–जन आज भी रूढ़ियों, परंपराओं एवं दकियानूसी विचारों के बज–बजाते परिवेश में जीने को विवश हैं। दूसरी तरफ धर्म और अध्यात्म की ओट में शब्द के आडंबर के बलबूते शीर्ष पर बैठे हुए लोग आनंद अनुभूत में डूबे हुए ऐशों आराम की जिंदगी बसर कर रहे हैं।

Received: 19.12.2020 **Accepted:** 14.01.2021 **Published**: 14.01.2021

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.

Journal of Advance Research in Science and Social Science (JARSSC)
Official Publication of Indian Mental Health & Research Centre
DOI: 10.46523/jarssc.04.01.25
Multidisciplinary, Open Access
Impact Factor: 3.575

ISSN: 2582-2004
Volume 04, Issue 01

सन्दर्भ

1. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, विपिन चन्द्र, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2005 पृ0 443
2. कविता के नये प्रतिमान, नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2012, पृ0 81–82
3. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ0 अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संशोधित संस्करण 2012, पृ0 48
4. आलोचना के प्रगतिशील सरोकार, शिवकुमार मिश्र, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृ0 51
5. साहित्य और इतिहास दृष्टि, मैनेजर पाण्डेय, पृ0 35–36
6. आधुनिकतवाद और साहित्य, दुर्गाप्रसाद गुप्त, सामायिक बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011 पृ0 56

Received: 19.12.2020 **Accepted:** 14.01.2021 **Published**: 14.01.2021

This work is licensed and distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0), which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any Medium, provided the original work is properly cited.